



भारत में स्वाधीनता संघर्ष के दौर में हिन्दी नाटक का विकास

सुखबीर सिंह

एम.ए., एम.फिल, एवं नेट (हिन्दी)

मौलिक मुख्याध्यापक

रा0उ0विद्यालय-घुसकानी

जिला –भिवानी (हरियाणा)

शोध-आलेख सार: वस्तुतः भारत में स्वाधीनता संघर्ष के दौर में हिन्दी नाटक का उद्भव एवं विकास अपने आप में एक अनोखी घटना मानी जाती है क्योंकि इस युग में ब्रिटिश अत्याचारों के विरुद्ध भारतीय जनमानस को जगाने तथा समाज सुधार की दृष्टि से कार्य करने के प्रयोजन हेतु साहित्यकारों अपने सामाजिक दायित्व का निर्वहन करना अति आवश्यक था। अतः इस दिशा में हिन्दी नाटक के रचनाकारों के सामने दोहरी चुनौती थी। उन्हें राष्ट्रीय जागरण के साथ-साथ समाज सुधार की दिशा में भी साहित्य रचना करके राष्ट्रवादी नेताओं व समाज सुधारकों की मदद करना भी था। वस्तुतः हिन्दी में नाटक विद्या का विकास बहुत पुराना नहीं है। इस विद्या के कई रूप सामने आए हैं और नाटक में जीवन के हर क्षेत्र को देखा जा सकता है। अधिकांश साहित्यकार इसे एक सक्रिय और गतिशील विद्या मानते हैं। प्रस्तुत शोध पत्र में भारतेन्दु युग से लेकर प्रसादोत्तर युग तक हिन्दी नाटक के उद्भव एवं विकास पर प्रकाश डाला गया है।

मूलशब्द: हिन्दी नाटक, भारतेन्दु युग, द्विवेदी युग, प्रसाद युग, प्रसादोत्तर युग, रंगमंच नाटक, एकांकी नाटक, गीति नाटक।

भूमिका: भारत में हिन्दी नाटक विद्या का विकास अधिक पुराना नहीं है। यदि इसकी विकास यात्रा पर दृष्टिपात किया जाए तो पता चलता है कि यह विद्या समय की मांग



के अनुसार स्वयं को बदलने में सफल रही है। इसी प्रवृत्ति के कारण हिन्दी नाटक में इस विद्या के कई रूप उजागर हुए हैं। इनमें रेडियो नाटक, रंगमंच नाटक, दूरदर्शन नाटक, नुक्कड़ नाटक, एकांकी नाटक तथा गीति नाटक प्रमुख माने जाते हैं। वस्तुतः नाट्य विद्या दृश्य भी है और श्रव्य भी। इसके दृश्य होने का अर्थ है – रंगमंच नाटक। रंगमंच से अलग इस विद्या का दृश्य होना असंभव है। चूंकि नाटक शब्द की उत्पत्ति 'नट्' धातु से हुई है। नट् की क्रिया होने के कारण ही नाटक संज्ञा की सार्थकता है। वास्तव में नट् की क्रिया शब्द बहुत व्यापक है जो रंगमंच सहित समस्त क्रियाकलापों को समेट लेता है। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने नाटक शब्द की व्याख्या करते हुए लिखा है – **“नाटक शब्द का अर्थ है, नट् लोगों की क्रिया”**

हिन्दी के बोलचाल में आज आने के बाद और साहित्यकार की अभिव्यक्ति का सशक्त माध्यम बनने के बाद भारतेन्दु काल से लेकर आज तक हजारों नाटक हिन्दी साहित्य में उपलब्ध हैं। भारत में हिन्दी नाटक के विकास क्रम को निम्न प्रकार से किया जा सकता है:—

भारतेन्दु युग: अधिकांश साहित्यकार इस बात से सहमत हैं कि एक सशक्त एवं प्रभावशाली विद्या के रूप में हिन्दी नाटक का व्यवस्थित विकास भारतेन्दु युग में हुआ। 'आनन्द रघुनन्दन' और 'नहुष' भारतेन्दु युग की प्रमुख नाटक कृतियाँ हैं। उन्होंने नाटक नामक अपनी पुस्तक में हिन्दी नाटक का प्रारम्भ 'देव भाषा प्रप्रंच', 'प्रभावती' तथा 'आनन्द रघुनन्दन' नाटक से किया है। डॉ. सोमनाथ गुप्त, दशरथ ओझा, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल और गुलाब रॉय भी विश्वनाथ सिंह के 'आनन्द रघुनन्दन' को ही हिन्दी का प्रथम मौलिक नाटक मानते हैं। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने गिरधर दास के 'नहुष' को



हिन्दी का प्रथम नाटक माना है। तत्कालीन नाटकों की भाषा बृज भाषा है और रंगमंचीय दृष्टि का अभाव इस युग के नाटकों में दृष्टिगोचर होता है।

वास्तव में भारतेन्दु युग ने हिन्दी नाटकों को नया जीवन दिया। भारतेन्दु युग में 'भारत –दुदर्शा', 'अन्धेर नगरी', 'प्रेम योगिनी', 'विद्या सुन्दर', 'मुद्रा राक्षस', 'भारत जननी', 'सत्य हरिश्चन्द्र' आदि नाटकों का अनुवाद भी हुआ। इस युग में नाटक विद्या भारतीय दृष्टिकोण के अनुसार ही विकसित हुई। वस्तु और शिल्प की दृष्टि से भारतेन्दु हरिश्चन्द्र इस युग के नाट्य प्रवर्तक हैं। इनके अलावा प्रताप नारायण मिश्र, बालकृष्ण भट्ट, बद्रीनारायण चौधरी, लाला श्रीनिवास दास, आदि भी इस युग के ही नाट्यकार हैं। नाटक रचना में सहयोग देने वाले इन नाटककारों की पैनी दृष्टि रंगमंच नाटकों पर पड़ी और भारतेन्दु जैसे प्रबुद्ध जन एवं नाटककार के मार्गदर्शन में 'अन्धेर नगरी' नाटक का सफल मंचन हुआ। डॉ. रामजन्म शर्मा का मानना है – 'भारतेन्दु के द्वारा भारतीय और यूरोपीय नाट्य कलाओं के समन्वय का सजग उद्योग संभव हुआ।'²

इसी तरह डॉ. भगवती प्रसाद शुक्ल ने लिखा है— 'स्वयं भारतेन्दु और उसके सहयोगियों ने पूर्व और पश्चिम की नाट्य परम्पराओं का समावेश अपने नाटकों में इस उद्देश्य से किया, ताकि हिन्दी में उनकी तकनीक का ज्ञान हो सके।'³

इस तरह भारतेन्दु युग के बारे में यह बात स्पष्ट है कि हिन्दी नाट्य के क्षेत्र में भारतेन्दु एक समन्वयात्मक बुद्धि लेकर अवतरित हुए थे। उन्होंने किसी समय की सीमा से न बंधकर हिन्दी नाटक को नई दिशा और गति दी। उनका तथा उनके सहयोगियों का यह मानना था कि नाटक को रंगमंच से अलग नहीं किया जा सकता। भारतेन्दु स्वयं



कहते थे कि यदि प्रत्यक्ष अनुभव करा दे तो उससे चतुर्गणित आन्नद होता है। दृश्य काव्य की संज्ञा रूपक है अर्थात् नाटक का आन्नद रंगमंच पर ही संभव है।⁴

द्विवेदी युग: यह युग हिन्दी नाटक की दृष्टि से सुधारवाद का युग था। इसलिए मनोरंजन को पृथक् देने वाले नाटकों की रचना इस युग में बहुत कम हुई। इस युग में रचित नाटकों के पात्र सात्विक प्रवृत्ति के महापुरुष थे। इस युग में वृन्दावन लाल द्वारा रचित 'सेनापति ऊद्दल' तथा जगन्नाथ प्रसाद चतुर्वेदी का 'तुलसीदास' इस श्रेणी के अन्तर्गत आते हैं। वास्तव में इस युग के नाटककार नाटकों की रचना करते समय आर्यसमाज और गांधी जी की विचारधारा से बहुत प्रभावित थे और इस दौर के नाटक सांस्कृतिक और राजनीतिक सुधार आन्दोलनों से भी प्रभावित हुए। अन्ततः भारतेन्दु युग में नाटकों के अनुवादों का जो सिलसिला चला था, वह इस युग में भी जारी रहा और मौलिक नाटकों की रचना बहुत कम हुई। इस युग में रामकृष्ण वर्मा, लाला सीताराम, तथा रूपनारायण पाण्डेय ने अनुवाद कार्य को पूरा किया। विषय की दृष्टि से इस युग में राधा चरण गोस्वामी द्वारा रचित 'श्रीदामा', महावीर सिंह द्वारा रचित 'नल-दमयन्ती', बालकृष्ण भट्ट 'वेणुसंहार', वृन्दावनलाल वर्मा द्वारा लिखित 'सेनापति ऊद्दल', माखनलाल चतुर्वेदी द्वारा रचित राष्ट्रीय नाटक 'कृष्णार्जुन युद्ध', जीवनानन्द शर्मा का नाटक 'भारत विजय' एक सामाजिक नाटक के रूप में प्रसिद्ध है।

प्रसाद युग: यह युग वर्ष 1907 से 1937 तक माना जाता है। इस काल में एक नए नाट्य आन्दोलन का उद्भव हुआ और शिल्प की दृष्टि से नाट्य साहित्य में युगान्तरकारी परिवर्तन हुए। इस दौरान नाटकों में अंको और दृश्यों का एक निश्चित स्वरूप निर्धारित हुआ। डॉ रामजन्म शर्मा का कहना है – "हिन्दी नाटकों का इन्होंने नवीन शैली में श्रंगार



किया और उसमें नूतन प्राण प्रतिष्ठा की।”⁵ रंगमंच के बारे में डॉ. सुषमा पॉल मल्होत्रा ने लिखा है— “रंगमंच की तो आकाल मृत्यु हिन्दी में दिखाई पड़ रही है।”⁶

यही कारण था कि इस युग में पारसी रंगमंच का प्रभाव बराबर बना रहा। प्रसाद जी के नाटकों में समृद्ध और भीड़ भरे रूपबद्ध घटना बहुल बहुमुखी कथा वस्तु संवाद और गीत इसी की तरफ संकेत करते हैं। प्रसाद की नाट्य परम्परा को आगे बढ़ाने वो नाटककारों में पं० लक्ष्मीनारायण मिश्र का नाम उल्लेखनीय है, जिन्होंने प्रसाद के भावना प्रधान नाटकों की धारा को छोड़कर बौद्धिकता से परिपूर्ण नाटकों की रचना शुरू की और हिन्दी नाटकों में बुद्धित्व का विकास प्रारम्भ हुआ। प्रसाद के बाद प्रेमी जी इस युग की नाट्यधारा से काफी देर तक जुड़े रहे।

इस युग में रेडियो नाटकों का भी जन्म हुआ। रेडियो नाटक के रूप में 1927 में बी.बी.सी. लन्दन द्वारा एक उपन्यास ‘लार्ड जिम’ का रेडियो रूपान्तर प्रसारित हुआ। आगे चलकर 1936 में हिन्दी में पहला नाटक प्रसारित हुआ। रेडियो नाटक के शुरुआती दौर में उपेन्द्र नाथ अशक, सेठ गोबिन्द दास, आदि के नाटक प्रसारित हुए। इसके अलावा गीति नाटक विद्या भी इस युग में प्रकट हुई। जयशंकर प्रसाद द्वारा रचित ‘करुणालय’ पहला गीति नाटक है। इस परम्परा को आगे बढ़ाने में भगवतीचरण वर्मा, उदयशंकर भट्ट आदि का योगदान रहा। इस युग में हिन्दी में एकांकी नाटक साहित्य की शुरुआत भी हुई और ‘एक घूंट’ हिन्दी एकांकी प्रकाशित हुई। इस दिशा में और भी कई नाटककारों ने अपनी महत्वपूर्ण भूमिका अदा की।

प्रसादोत्तर युग: यह युग वर्ष 1937 से 1947 तक माना जाता है। पश्चिमी नाट्य शैली का प्रभाव बढ़ने से इस युग में नाट्य शिल्प के क्षेत्र में क्रांतिकारी परिवर्तन हुए और भारतेन्दु और प्रसाद द्वारा प्रचलित मान्यताओं में परिष्कार और संवर्धन हुआ। इससे पहले



हिन्दी नाटककार नाट्यशाला की मानसिक परिकल्पना करके नाटक लिखता रहा था। इस नूतन प्रयोग को लेकर डॉ. विश्वभावन देवलिया ने लिखा है – ‘किन्तु गौरव की बात थी कि रंगमंच के विशाल अभाव के बावजूद हिन्दी नाटककार अपने मस्तिष्क की रंगशाला में अद्भुत और आश्चर्यजनक प्रयोग कर रहा था।’⁷

इस युग में गीति नाटककारों ने कई गीति नाटकों की रचना भी की। इनमें भगवतीचरण वर्मा का ‘तारा’, उदयशंकर भट्ट का ‘मत्स्य गंधा’, सुमित्रानन्दन पंत का ‘शिल्पी’ आदि प्रमुख हैं। अन्ततः बुद्धित्व के इस युग में शिल्प कला को लेकर नाटकों की रचना करते समय नये-नये प्रयोग हुए और हिन्दी नाटक रंगमंच की दृष्टि से कलात्मकता के रंग में रंग गया।

सारांश: इस प्रकार सम्पूर्ण नाटक यात्रा के इतिहास का अवलोकन करने के बाद हम कह सकते हैं कि हिन्दी नाटक हिन्दी साहित्य की सर्वश्रेष्ठ विद्या है और इसकी उत्पत्ति काफी पहले हो चुकी थी, लेकिन इसको नई दिशा देने में भारतेन्दु हरिश्चन्द्र का महत्वपूर्ण योगदान रहा। समय के साथ-साथ नाटक विद्या शिल्प और विषय भी बदलते गए और नाटक को नई गति मिलती रही। वस्तु स्थिति चाहे कुछ भी हो लेकिन द्विवेदी युग में हिन्दी नाटक विद्या सुधारवादी रूप में अपने गन्तव्य तक पहुँची और इस युग के नाटककार आदर्शवाद से काफी प्रभावित रहे। वस्तुतः इस युग के नाटककारों ने जीवन के हर पहलू पर दृष्टिपात किया और कई नाटकों का अनुवाद भी हुआ। प्रसाद युग में एक नए नाटक आन्दोलन की शुरुआत हुई और हिन्दी नाटकों ने शिल्प की दृष्टि से नवीन शैली में श्रंगार किया। प्रसादोत्तर युग में भी नाट्य शिल्प को लेकर क्रांतिकारी परिवर्तन हुए। यदि वर्तमान सन्दर्भ में देखा जाए तो नुक्कड़ नाटक आज भी एक



प्रभावशाली विद्या के रूप में दर्शकों पर अपनी छाप छोड़ने में सफल दिखाई दे रही हैं। अतः निःसन्देह तौर पर नाटक का जीवन के हर क्षेत्र में अत्यन्त महत्व दृष्टिगोचर होता रहा है और आज भी साहित्यकार इस बात से सहमत हैं।

सन्दर्भ सूची:

- ¹ भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, नाटक, पृ० 5.
- ² डॉ. रामजन्म शर्मा, स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी नाटक, पृ० 48.
- ³ डॉ. भगवती प्रसाद शुक्ल, प्रसाद युगीन हिन्दी नाटक, पृ० 10.
- ⁴ डॉ. सत्येन्द्र तनेजा, नाटककार भारतेन्दु की रंगपरिकल्पना, पृ० 18.
- ⁵ डॉ. रामजन्म शर्मा, स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी नाटक, पृ० 50.
- ⁶ डॉ. सुषमा पॉल मल्होत्रा, प्रसाद के नाटक तथा रंगमंच, पृ० 164.
- ⁷ डॉ. विश्वभावन देवलिया, नाटक प्रस्तुतिकरण: स्वरूप और प्रक्रिया, पृ० 106.